Volume-6, No.II, Aug-2019, pp. Hin.-18-21

भारतीय शिक्षा का आधार दर्शन

डॉ.जयप्रकाश तिवारी, सहायक प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र,
डा. राम मनोहर लोहिया महाविद्यालय, सोनभद्र (उ0प्र0) भारत।
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय वाराणसी (उ0प्र0) भारत।

भारतीय शिक्षा का मूल दर्शन भारतवर्ष के नाम में ही निहित है –मा+रतु यानि प्रकाश में रत। यहाँ प्रकाश से तात्पर्य मात्र भौतिक प्रकाश से नही है। बल्कि उस अध्यात्मिक प्रकाश से है जिससे मानव जीवन के समस्त पहलू– भौतिक, सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक प्रकाशित होते है। यह ज्ञान का प्रकाश है जो जीवन–मृत्यु तथा सृष्टि–प्रलय की सीमाओं से प्रभावित नही होता है। इसी तथ्य को ध्याम में रखकर भारतीय ऋषियों ने ''तमसोमा ज्योतिर्गमय का गीत गाया। भारत का अतीत भौतिक कारकों से उतना प्रभावित नही था जितना आध्यात्मिक चिंतन से प्रभावित था। फलतः भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत थी मानवता का विकास करना ही इस सभ्यता का मुख्य उद्देश्य था।

मुख्य शब्द–न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, वेदान्त दर्शन, मीमांशा दर्शन, बौद्ध दर्शन

वैदिक युग ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय सभ्यता के विकास का प्राचीनतम युग है। इस काल में आर्यों ने प्रकृति के रहस्यों को जानने हेतु जिन विचार पद्वतियों का सहारा लिया वे लगातार विकसित एवं परिमार्जित होती गयीं। इनका सुव्यवस्थित दार्शनिक स्वरूप उपनिषदों में मिलता है। भारतीय शिक्षा दर्शन का मूल इन्ही दार्शनिक विचार धाराओं में देखा जा सकता है। उपनिषदों में शिक्षा को किस हद तक महत्व दिया गया, यह उपनिषद के शब्दार्थ से ही स्पष्ट है। उपनिषद का शाब्दिकि अर्थ है। (उप+नि़+सद) रहस्य ज्ञान या शास्त्र ज्ञान के लिए गुरू के निकट बैठना और एकान्त में ज्ञान प्राप्त करना था। इससे यह स्पष्ट होता है कि जिज्ञासु विद्यार्थी गुरू के सानिध्य में रहकर तत्व ज्ञान प्राप्त करता था। शकराचार्य ने तैत्तिरीय उपनिषद की टीका में उपनिषद को परिभाषित करते हुए कहा कि उपनिषद वह ज्ञान है जिससे जन्म–मरण के बन्धनों से मुक्ति मिलती है और व्यक्ति उत्तम ज्ञान पाता है। ब्रह्म एवं आत्मा के सम्बन्धों की प्रकृति को जानने का बौद्धिक प्रयास किया जाता है। वस्तुतः ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली आध्यात्म विद्या ही थी जिसके माध्यम से आविद्या का विनाश एवं भौतिक सुखों एवं दुखों से मुक्ति मिल सकती है। इस ब्रह्म ज्ञान से ही मनुष्य को जन्म एवं मरण के बन्धन से मोक्ष प्राप्त होता है। इस मोक्ष का ज्ञान ही ब्रह्म ज्ञान है। इस प्रकार उपनिषद् ही मोक्ष विद्या या ब्रह्म शिक्षा का स्रोत्र है।ब्रह्म को जानने हेतु जिस ज्ञान का सहारा लिया जाता है उसे उपनिषदों में शिक्षा कहा गया है जिसे 'परा विद्या' का नाम दिया गया है। और जिसके माध्यम के शेष भौतिक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'अपरा विद्या' या अविद्या भी कहा गया हैं। उपनिषदों में मानव जीवन के उत्कर्ष के लिए ज्ञान के साथ कर्म को भी अनिवार्य माना गया परन्तु मानव के दिशा निर्देशन हेतु ज्ञान की महत्ता बनी रही। मुण्डकोपनिषद् में कर्म को अमृत की संज्ञा दी गई और कर्मरत मानव को ब्रह्म ज्ञानियों में सर्वोच्च माना गया। ईशोपनिषद् में यह बात कही गयी है। कि सौ वर्ष की आयु तक मनुष्य को अनवरत कर्म में लगा रहना चाहिए। इस संदर्भ में उपनिषदों की सर्व प्रमुख विशेषता कर्म एवं ज्ञान का समन्वय है। ज्ञान के सहयोग से कर्म की विशेषता बढ जाती है। वस्तुतः कर्म एवं ज्ञान मिलकर व्यक्तित्व का विकास करते है। दोनो में से किसी का न रहना निष्क्रियता का परिचायक है। कर्म और ज्ञान के समन्वित रूप से व्यक्ति जो कार्य करता है। उसे ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है और जीवन मृत्यु के बन्धन से मुक्ति पाकर अमरता की ओर अग्रसर हो जाता है।

सांख्य दर्शन

सांख्य दर्शन वह पहला भारतीय दर्शन था जिसमें व्यवस्थित ढंग से जगत एवं जीवन पर विचार करने का प्रयास किया गया है। सांख्य दर्शन में जगत की व्याख्या प्रकृति एवं पुरूष के संयोग से की गई है इस दर्शन में जगत के मूल में प्रकृति को माना गया है। जगत के निर्माण में सत्व,रज, तम–इन तत्वों का योग माना गया है जो अलग होकर भी साथ–साथ कार्य करते है। सत्व में प्रकाश एवं पसन्नता है,रज तत्व में गति, क्रिया और क्षेम है तथा तम में स्थिरता और अवरोध है। इनमें गति या

चेतना ''पुरूष'' से ही आती है जिससे परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। वस्तुतः 'पुरूष' अनेक और अन्नत है। जो जगत को जागृत और उत्प्रेरित करता है।

सांख्य योग ने प्रथम बार वैदिक धर्म एवं कर्म काण्डों द्वारा मानव के कष्टों की समाप्ति पर पश्न चिन्ह लगाया। वैदिक धर्म में तीन अवगुण विद्यमान थे–

1. यह 'अविशुद्ध' या अशुद्ध था क्योंकि इसमें जानवरों की बलि दी जाती थी।

2. इसे 'क्षय' होने वाला कहा गया क्योंकि इससे तत्कालिक फल ही मिलता है, मुक्ति नही।

3. यह प्रशन्नता या धर्म को विभिन्न स्तरों में बाटता है क्योंकि धनी लोग ही मँहगें यज्ञों का अनुष्ठाान कर सकते है। अतः सांख्य दर्शन के अनुसार मुक्ति वैदिक कर्म काण्डों से नही बल्कि ज्ञान से प्राप्त की जाती हैं जिसका प्रतिविम्ब प्रतिपादन कपिल द्वारा किया गया है।

सांख्य दर्शन इस अर्थ में अन्य दर्शनों से अधिक प्रगतिशील है कि इसमें ज्ञान को केवल तीन द्विज कहे जाने वाले वर्णें तक ही नही सीमित किया गया वरन् शूद्रों को भी ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार दिया गया।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन के अन्तर्गत सत्य तक पहुँचने के लिए तर्क का आश्रय लिया गया। न्याय दर्शन के केन्द्र में बुद्दि या ज्ञान है। इसके अनुसार बुद्दि से ही सम्पूर्ण क्रियाओं का संचालन होता है जैसा कि तर्क संग्रह में कहा गया है। सर्व व्यवहार हेतु ज्ञानम् (बुद्दि) अर्थात सभी व्यवहार के लिए ज्ञान ही आवश्यक है या बुद्दि व्यवहार का साधन है। न्याय दर्शन में बुद्दि, ज्ञान और उपलब्धि को समानार्थक माना गया।ज्ञान का दूसरा स्वरूप स्मृति है जिसका विषय अनुभव की तरह वर्तमान नही अपितु भूत है। न्याय दर्शन के अनुसारमुक्ति हेतु सच्चा ज्ञान आवश्यक है जो अनायास प्राप्त नही होता है। इसके लिए मानव को कई स्तरों से गुजरना पडता है जैसे–1. शास्त्रों का श्रवण 2. तर्क आधारित विचार 3. ध्यानस्थ होकर आत्मानुभूति की प्राप्ति करना। इन तीन अवस्थाओं से गुजरने के उपरान्त ही व्यक्ति को अज्ञान से मुक्ति मिलती है।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ज्ञान की वह महान अवस्था वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जिसने स्वयं को तीन अवगुणों से मुक्ति कर लिया है।

(क) राम–अर्थात्काम,मत्सर (स्वार्थ, स्पृहा तथा लोभ) एवं तृष्णा।

(ख) द्वेष–क्रोध, ईर्ष्या,आसूया, द्रोह एवं अमर्ष (अधीरता)।

(ग) मोह– अर्थात् मिथ्या ज्ञान, विचिकित्सा (सन्देह), मान (गर्व) एवं प्रमाद द्वारा उत्पन्न गलत दृष्टिाकोण।

इन मूल दोषों का कारण अज्ञान माना गया जिसकी समाप्ति केवल मनन एवं ध्यान से ही हो सकती है। इसमें कई भौतिक एवं नैतिक कठिनाइयाँ आती हैं जिन पर विजय प्राप्त करने हेतु योग आवश्यक है।

ज्ञान कें तत्व

गौतम के अनुसार सोलह पदार्थों की समझ ही ज्ञान का आधारभूत तत्व है। इनमें से जिनका शिक्षा पर अधिक प्रभाव निम्नलिखित है–

प्रमाण प्रमाण द्वारा विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। इसे ज्ञान का साधन कहा गया है जिसे प्राप्त करने के चार स्रोत है। 1. प्रत्यक्ष 2.अनुमान 3. उपमान 4. शब्दः विशेषतः वेद के शब्दों को आप्त उपदेश भी कहा गया है।

प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष उस असंदिग्ध अनुभव को कहते है। जो इन्द्रिय संयोग से उत्पन्न होता है और यर्थाथ भी होता है।

अनुमानप्रत्यक्ष के बाद ज्ञान का दूसरा स्त्रोत अनुमान को माना गया है जिसमें बिना वस्तु के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आये उसमें अन्तर्निहित लक्षणों के आधार पर उसके बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसका तात्पर्य है वस्तु के लक्षण एवं गुण में स्थित सम्बन्ध को स्पष्ट करना। यह पश्चितम जगत द्वारा दिये गये निगमन पद्वति (अरस्तु द्वारा प्रतिपादित) एवं आगमन पद्वति (मिल द्वारा वर्णित) से कही अधिक वैज्ञानिक है।

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक एक प्रकार का अणु दर्शन था जिसके अनुसार सृष्टि की रचना अनेक अणुओं से हुई , परन्तु ये आत्मा से भिन्न थे। इसलिये पदार्थ एवं आत्मा के जगत का अस्तित्व अलग–अलग था मानव का अनुभव अन्ततः उसे इस सत्य की अनुभूति कराता है कि उसका 'स्व' बाह्य वस्तुओं एवं आन्तिरिक प्रक्रियाओं , जो की पीडा के स्रोत है, से भिन्न है। क्रमशः वह जीवन एवं उससे जुडें सुखों–दुखों से अपने को अलग अनुभव कराता है। उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य पीडा से मुक्ति पाना है इसके लिये वह गुरू के सानिध्य में जाता है। उनके प्रवचनों का वह श्रवण तथा मनन करता है। एवं निदिध्यासन के द्वारा अन्तिम सत्य का साक्षात्कार करता है।

अविद्या एवं विद्या के अन्तर को स्पष्ट करते हुये विद्या को दुष्टज्ञानम् या पथ भ्रष्ट ज्ञान कहा गया है। इसका कारण इन्द्रियों का उचित प्रयोग नही

करना है। और इसी के कारण इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान भी अधूरा होता है। विद्या को अदुष्टज्ञानम् या पूर्ण ज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे ऋषियों की अन्तः दृष्टि या सम्पूर्ण ज्ञान सिद्ध दर्शन भी माना गया है।

योग दर्शन

योग दर्शन अन्य दर्शनों की अपेक्षा सुव्यवस्थित एवं पूर्ण है। इस दर्शन में आत्म अनुशासन एवं नियन्त्रण पर अधिक जोर दिया गया है जो कि इसके दार्शनिक सिद्धन्त को समझने एवं उन्हें व्यवहार में लाने हेतु आवश्यक था। योग साधना में अग्रसर होने के लिए शरीर रचना का विस्तृत ज्ञान आवश्यक था, इसलिए योगाभ्यास करने वालों को चिकित्सा शास्त्र के सम्पर्क में रहना पडता था।

योग दर्शन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा सिद्धान्त का उद्देश्य उसी तरह 'मस्तिष्क की शुद्धता' से है जिस तरह से चरक के आयुर्वेदिक सिद्धान्त का उद्देश्य मानव शरीर के स्वास्थ्य एवं महाभाष्य के व्याकरण का उद्देश्य शब्द या वाक्य की शुद्धता से है।' याज्ञवल्क्य के अनुसार योग से तात्पर्य व्यक्ति एवं परम ब्रह्म का संयोग । पतंजलि ने भी योग से यही तात्पर्य लगाया है तथा साथ ही पुरूष एवं प्रकृति के वियोग पर बल दिया है। इस वियोग से उबरने हेतु योग की आवश्यकाता पडती है। योग के द्वारा इन्द्रियां पूर्णतः मानव के वश में हो जाती है। तथा वह समाधि की अवस्था में प्रवेश करता है जिससे मानव कामनाओं से मुक्त होकर अपनी सभी मानसिक प्रक्रियाओं को एकाग्र कर ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

जब तक मनुष्य के चित में विकार भरा रहता है और उसकी बुद्धि दूषित रहती है तब तक वह तत्व ज्ञान नही प्राप्त कर सकता। शुद्ध हृदय और निर्मल बुद्धि से ही आत्म ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। सांख्य–योग कें मतानुसार मुक्ति के लिये 'प्रज्ञा' आवश्यक है। प्रज्ञा का अर्थ है। आत्म दृष्टि के द्वारा इस सत्य का दर्शन कि आत्मा नित्यमुक्त, शुद्ध चैतन्य स्वरूप और शरीर तथा मन से सर्वथा भिन्न है। परन्तु यह दृष्टि तभी प्राप्त हो सकती है। अब अन्तः करण सर्वथा निर्विकार, शुद्ध एवं शान्त हो जाए। चितवृत्ति की शुद्धता के लिए योग आठप्रकार के साधनबतलाता है। ये इस प्रकार है–1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान तथा, 8 समाधि।

योग का शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत हद तक साख्य दर्शन के सिद्धान्तों पर आधारित है। अतः सांख्य दर्शन में वर्णित शिक्षा सिद्धान्त योग दर्शन के शिक्षा सिद्धान्तों का भी वर्णन करता है।

मीमांशा दर्शन

मीमांशा का अभिप्राय है। युक्तियों की समीक्षा द्वारा किसी विषय या समस्या का निर्धारण। इसका जन्म इस भावना के कारण हुआ कि बाह्मण शक्ति के स्रोत वेदों की उपेक्षा की जा रही थी। इसके समर्थकों ने वेदों के सिद्धान्त पर अत्यधिक बल दिया और वेदान्तर विचारधारा की चुनौती को गलत बाताया । इसके अनुसार वेद सम्मत कर्म ही 'धर्म' है। एवं वेद द्वारा निषिद्ध कर्म 'अधर्म' है। पूर्व मीमांशा की प्रथम उक्ति है। 'अथतों' धर्म जिज्ञासा' जिसका अर्थ है अब धर्म एवं कर्तव्य को जानने की इच्छा। यहाँ धर्म से तात्पर्य है। बाह्मणों में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के धार्मिक क्रिया कलापों को एकत्र कर उन्हे तर्क सम्मत बनाना। मीमांशा दर्शन में अध्ययन की जाने वाली वस्तु की अपेक्षा अध्ययन की विधि पर अधिक बल दिया गया हैं। इसकी तर्कपरक आलोचना एवं व्याख्या की विधि का व्यापक प्रयोग विशेषतः कानून के क्षेत्र में विवादास्पद विषयों को सुलझाने हेतु किया गया है।

सामाजिक दृष्टिकोण से मिमांशा दर्शन काफी प्रगतिशील था इसमें महिलाओं को 'वस्तु' की संज्ञा नही दी गई है। उसे क्रय या विक्रय का सामान मानने के स्थान पर पुरूषों के समक्ष माना गया। जेमिनी ने पूर्व के विचारों का खण्डन करते हुये कहा कि महिलाओं को पति के साथ सारे धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार है। इसी तरह शुद्रों के भी धर्म एवं उससे सम्बन्धित अनुष्ठानों में भाग लेने के अधिकार का प्रबल समर्थन किया गया। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय हैं कि धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने हेतु स्त्रियों एवं शूद्रों को जिस बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती थी उसे प्राप्त करने का अधिकार दिया गया अतः इस तरह कहा जा सकता है। कि स्त्री,पुरूष, ब्राह्मण शूद्र सभी शिक्षा प्राप्त करने के समान अधिकारी थे।

वेदान्त दर्शन

अन्ततः सर्वप्रमुख मत के रूप में वेदान्त का विकास हुआ जिसने आगे चलकर अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की । वेदान्त ने विशेषकर वाद की शताब्दिश्यों में ब्राह्मण विरोधी मतों के सिद्धान्तों का निर्णायक रूप से खण्डन किया । वेदान्तियों का दावा था कि इस मत का जन्म वेदों से हुआ है। उन्होने यह माना कि प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का अंश है। तथा जीवन का चर्म लक्ष्य आत्मा का परमात्मा से संयोग है। इस सिद्धान्त का स्पष्ट स्वरूप उपनिषदों में मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद में ब्रह्मा की सत्ता को सर्वव्यापी मानते हुये घोषणा की गई ''सर्व खलु इदं ब्रह्म।''

वेदान्त में धर्म जिज्ञासा के स्थान पर ब्रह्म जिज्ञासा पर अधिक जोर दिया गया है। अतः वेदान्त शाखा कें विद्यार्थियों द्वारा उन वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करने पर बल दिया जाता है। जिसका सम्बन्ध ब्रह्म ज्ञान से था। इसके अन्तर्गत धार्मिक कर्म काण्डों से सम्बन्धित तथ्यों की उपेक्षा की जाती थी। वेदान्त था मानना का कि इन कर्म काण्डों से तत्कालिक लाभ ही हो सकता है। लेकिन परमानन्द या शाश्वत सत्य की प्राप्ति नही हो सकती वैदिक ग्रन्थो में शिक्षक पहले उस साहित्य का अध्ययन करता था। जिससे छात्र पहले स्वयं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें। इसके उपरान्त ब्रह्म से सम्बन्धित ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था इसके अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य पालन को आवश्यक माना गया।

इस प्रकार हम पाते है कि इन दर्शनों के मध्य यद्यपि ज्ञान की अवधारणा, पाठ्यवस्तु एवं अध्ययन विधि में महत्वपूर्ण विभेद है लेकिन उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण समानता यह है कि इन सबके अनुसार ज्ञान प्राप्ति का अन्तिम उद्देश्य है– जीवन–मरण के बन्धन से मुक्ति। विभिन्न दार्शनिक विचारों के अस्तित्व से तत्कालिक बौद्धिक जगत की उत्कृष्टता का पता चलता है। इन सभी बौद्धिक वादों का एक ही लक्ष्य था, भौतिक संसार की चिंता छोड आत्म ज्ञान की प्राप्ति करना। इन सबकी भारतीय शिक्षा दर्शन के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

बौद्ध दर्शन

बौद्ध धर्म का उदभव् और विकास भारत में ही हुआ है तथा उसके बीज उपनिषदों में विद्यमान है। अधिकांश विचारक बौद्ध धर्म को विशाल हिन्दू धर्म का ही एक स्वरूप मानते है और इसमें कोई सन्देह नही कि हिन्दू धर्म के अनेक मौलिक सिद्धान्त बौद्ध धर्म में भी अक्षुण्ण बने रहे ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत कुछ दोष आ जाने के कारण बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वास्तव में बौद्ध धर्म परिस्थितियों की उपज था क्योंकि उत्तर वैदिक काल में कर्म काण्ड की प्रधानता से यज्ञ के नाम पर पशु बलि का बोलबाला था और तपस्या के नाम पर विभिन्न शारीरिक यातनाएं अविष्कृत हो चुकी थी। अतः गौतम बुद्ध ने एक ऐसे धर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण करके धर्म का एक नवीन रूप प्रस्तुत करें।

महात्मा बुद्ध के अनुसार संसार दुःखमय है। अतः इसका त्याग करके मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। ऐसा होते हुए भी आत्मा, दुख मोक्ष कर्म तथा पुर्नजन्म का सिद्धान्त वैदिक धर्म के समान ही है

इस प्रकार ये निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य अत्यन्त ही व्यापक थे और शिक्षा का उद्देश्य था मानव का सर्वागीण विकास। शिक्षा मानव में निहित सारी शक्तियों–बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक, शारीरिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। शिक्षा मानव को न केवल समाज का एक स्वावलम्बी सदस्य बनाती थी। बरन् उसे उस प्रकाश से आलोकित करती थी जिसके द्वारा वह सत्यम, शिवंम एवं सुन्दरम् के शाश्वत आदर्शों को प्राप्त कर सकता था। यह शिक्षा ऐसी थी जिसमें विद्यार्थियों को आज की तरह महत्वहीन उपाधियां तो नही मिलती थी पर वे आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्धों को जानकर असत्य से सत्य की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर एवं मृत्यू से अमरता की ओर बढनें मे सक्षम होते थे।

सन्दर्भ–

1. एम0डब्लू0 थामस (1891), हिन्दी एण्ड प्रोस्पेक्ट ऑफ विटिज एजूकेशन इन इण्डिया , स्वयं ऑफ सन्स, इण्डिया पृष्ठ।
2. डॉ0 राधा मुकन्द मुकर्जी (1951) ऐशयिण्ट इण्डियन एजूकेशन मातीलाल बनरसीदास, दहेली, पृष्ठ 22।
3. आर0ई0 ह्यूम अनूदित (1942) बृहदारण्यक उपनिषद ऑक्सफोर्ड , लन्दन 1,4,10।
4. आर0के0 मुकर्जी (1960) ऐशियण्ट इण्डियन ऐजूकेशन, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली पृष्ठ 104।
5. डॉ0 श्रीमती शर्मा मणि (2000) समकालीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप तथा उसकी सम्भावनाऐं एच0पी0 भार्गव बुक हाऊस, आगरा पृष्ठ 5।
6. याज्ञबत्सल्य स्मृति, अपरार्क का भाष्य (1914), निर्णय सागर प्रेस बम्बई, पृष्ठ 58,70।
7. मनु मनुस्मृति ओमप्रकाश पाण्डेय द्वारा अनूदित (2003), चौखम्भा ओरियाटालिय, जवाहरनगर, दिल्ली,2 पृष्ठ 154–156।